भगवती जिनदीक्षा : एक दृष्टि

• श्रमणाचार्य विमर्शसागर

स्वात्म स्वभाव की दृढ़ प्रतीति करनेवाला, संसार-शरीर-भोग के स्वभाव का सतत् समीक्षक, भव्य मुमुक्षु आत्मा, विभाव संसार से मुक्ति की भावना करनेवाला कर्म-क्षयकारी भगवती जिनदीक्षा की शरण लेता है। यह जिनदीक्षा ही सिद्धि में कारण मानी गई है।

आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ने अष्टपाहुड में कहा है -

णवि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो वि मोक्ख मग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।।

(सूत्र प्राभृत 23)

अर्थात् जिनशासन में वस्त्रधारी को सिद्धि नहीं कही, चाहे वह तीर्थंकर भी क्यों न हो। नग्न दिगम्बर वेष ही मोक्षमार्ग है, शेष सभी उन्मार्ग हैं।

दीक्षार्थी का स्वरूप-

वण्णेसु तीसु एक्को कल्लाणगो तवोसहो वयसा।
सुमुहो कुंछारहिदो लिंगग्गहणे हवदि जोग्गो।।

(प्रवचनसार ता.वृ. 25)

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों में से किसी एक वर्ण का, नीरोग, तप में समर्थ, अतिबाल-अतिवृद्धपने से रहित, योग्य आयुवाला, सुन्दर, दुराचार आदि लोकापवाद से रहित ऐसा पुरुष ही जिनलिंग ग्रहण के योग्य होता है।

शान्तस्तप: क्षमोकुत्सो वर्णेष्वेकतमस्त्रिषु।
कल्याणांगो नरो योग्यो लिंगस्य ग्रहणेमत:।।

(योगसार प्राभृत-8/51)

जो शांत है, तप के लिए समर्थ है, निर्दोष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों में से किसी एक वर्ण का है सुन्दर शरीर के अवयवों का धारक मनुष्य निर्ग्रन्थ लिंग के ग्रहण योग्य माना गया है।

विशुद्ध कुलगोत्रस्य सद्वृत्तस्य वपुष्मत:
दीक्षायोग्यत्वमाप्नातं सुमुखस्य सुमेधस:। (महापुराण-39/158)

जिसका कुल गोत्र विशुद्ध है, चरित्र उत्तम है, मुख सुन्दर है और प्रतिभा अच्छी है ऐसा पुरुष ही दीक्षा योग्य माना गया है।

प्राज्ञेन ज्ञातलोकव्यवहृतिमतिना तेन मोहोज्झितेन, प्राग्विज्ञात: सुदेशो द्विजनृपतिवणिग्वर्णवर्ण्योडपूर्ण:।
भूभृल्लोकाविरूद्ध: स्वजनपरिजनोन्मोचितोवीतमोहश्चित्रापस्मार रोगाद्यपगत इति च ज्ञाति संकीर्त्तनाद्यै:।। (आचारसार-1/9)

अर्थात् जो दीक्षार्थी योग्यदेश का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण में श्रेष्ठ, परिपूर्ण अंगवाला, राजा और लोक से अविरुद्ध, स्वजन-परिजन से अनुमति सहित निर्मोही, अपस्मार आदि विचित्र रोगों से रहित है उसकी जाति आदि के द्वारा सर्वप्रथम मोहरहित प्रज्ञाशील लोक व्यवहार के ज्ञाता आचार्य उसकी शुद्धि को जानते हैं।

प्रश्न - क्या शूद्र दीक्षा ले सकता है?

उत्तर - शूद्र भगवती जिनदीक्षा ग्रहण नहीं कर सकता, लेकिन अणुदीक्षा ग्रहण कर सकता है। शूद्र के दो भेद कहे हैं - कारूशूद्र और अकारुशूद्र। यहाँ कारुशूद्र के भी दो भेद है- स्पृश्य कारूशूद्र और अस्पृश्य कारूशूद्र। इन्हें भोज्य और अभोज्य इन संज्ञा रूप भी कहा है। तथा भोज्य कारूशूद्र को सत्शूद्र ऐसी भी संज्ञा कही गई है।

श्री प्रवचनसारजी की तात्पर्यवृत्ति में प्रक्षेपक गाथान्तर्गत कहा भी है-

'यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि'

अर्थात् सत्शूद्र भी यथायोग्य दीक्षा (क्षुल्लक दीक्षा) के योग्य होते हैं। प्रायश्चित्त चूलिका गाथा 154 में भी कहा है-

'भोज्यष्वे प्रदातव्वं सर्वदा क्षुल्लकवृतम्'

अर्थात् कारूशूद्र में केवल भोज्य अर्थात् स्पृश्यशूद्रों को ही क्षुल्लक व्रत देना योग्य है। यहाँ इतना विशेष है कि म्लेच्छ भूमिज मनुष्य कथंचित् भगवती जिनदीक्षा धारण कर सकता है।

लब्धिसारजी में कहा है–

दिग्विजयकाले चक्रवर्तिता सह आर्यखण्डमागतानां म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सहजात वैवाहिक सम्बन्धानां संयम प्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा तत् कन्याकानां चक्रवर्त्यादि–परिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यवपदेशभाजः संयमसंभवात् तथा जातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात्।

अर्थात् दिग्विजयकाल में चक्रवर्ती के साथ जो मनुष्य आर्यखण्ड में आते हैं और चक्रवर्ती आदि के साथ उनका वैवाहिक सम्बन्ध पाया जाता है उनके संयम ग्रहण के प्रति विरोध का अभाव है अथवा जो म्लेच्छ कन्याएँ चक्रवर्ती आदि से विवाही गयी हैं उनके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वे माता के पक्ष से म्लेच्छ हैं और उनके दीक्षा ग्रहण सम्भव है।

1. जिनदीक्षा की योग्यता–

श्री प्रवचनसारजी में दीक्षार्थी की अंतरंग योग्यता इस प्रकार कही है–

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किं चि।
इदि णिच्छिऽर्भ जिदिंदो जादो जधजादरूवधरो ।।4।।

अर्थात् मैं शुद्धचिन्मात्र से अन्य जो परद्रव्य है उनका नहीं हूँ और न परद्रव्य मेरे हैं इसलिए इस लोक में मेरा कुछ भी नहीं है। इस तरह निश्चय करता हुआ जितेन्द्रिय मुमुक्षु आत्मा का जैसा स्वयंसिद्ध स्वरूप है उसको अर्थात् यथाजात रूप को धारण करता है।

2. जिनदीक्षा की अयोग्यता–

श्री भगवती आराधना में कहा है–

पुरुष लिंग में चर्म न होना, अतिशय दीर्घता, बारम्बार चेतना होकर ऊपर उठना, ऐसे दोष यदि हों तो दीक्षा के अयोग्य है। इसी तरह यदि अण्ड भी अतिशय लम्बे हों, बड़े हों, तो गृहस्थ नग्नता के अयोग्य है।

श्री योगसार प्राभृत 8/52 में भी कहा है–

कुलजातिवयोदेह कृत्यबुद्धिकुधादयः।
नरस्य कुत्सिता व्यङ्गास्तदन्ये लिंगयोग्यता।।

मनुष्य के निन्दित कुल, जाति, वय, शरीर, कर्म, बुद्धि और क्रोध आदिक व्यंग–हीनता हैं निर्ग्रन्थ लिंग के धारण करने में बाधक हैं, इनसे भिन्न निर्ग्रन्थ लिंग ग्रहण में कारण है।

बोधपाहुड में टीका में कहा है–

कुरूपिणो हीनाधिकांगस्य कुष्ठादिरोगिणश्च प्रव्रज्या न भवति–

अर्थात् कुरूप, हीन वा अधिक अंगवाले, कुष्ठ आदि रोगवालों के दीक्षा नहीं होती।

दानशासन में भी कहा है–

लोभिक्रोधिविरोधिनिर्दयहृदां मायाविना मानिनां
केवल्यागम–धर्मसंघबिबुधां वर्णानुवादात्मनाम्।
मुञ्चामो वदतां स्वधर्ममलं सद्धर्मविध्वंसिनां
चित्तक्लेशकृतां नृणां च गुरूभिर्देया न दीक्षा क्वचित् ।।24।।

अर्थात् जो लोभी, क्रोधी, विरोधी तथा निर्दय हृदय वाले हैं मायावी हैं, मानी हैं, केवली, आगम, धर्म, संघ और विद्वानों का अवर्णवाद करने वाले हैं, अपने निर्मल धर्म को व्यर्थ कहते हैं समीचीन धर्म का विध्वंस करने वाले हैं तथा चित्त में क्लेश का अनुभव करते हैं ऐसे मनुष्य गुरुजनों द्वारा कहीं भी दीक्षा देने योग्य नहीं हैं।

अन्धैश्च बधिरैर्मूकैरंगहीनैश्च पंगुलैः।
अपाणिभिर्निरंगुल्यै–र्जिनदीक्षा विवर्ज्यते।।

अर्थात् अन्धे, बहरे, गूंगे, अंगहीन, लंगड़े, हाथरहित तथा अँगुली रहित मनुष्यों के द्वारा जिनदीक्षा ग्राह्य नहीं है।

जिनदीक्षा भावना - आचार्य कृपा

अंतरंग–बहिरंग योग्यता वाला मुमुक्षु आत्मा शुद्धात्म तत्त्व की सिद्धि

के लिए निर्ग्रंथाचार्य के चरणों में जिनदीक्षा की भावना व्यक्त करता है।

भगवन् महयं संसार – सागरोत्तार–सेतुकाम्।
देहिश्रीजिनदीक्षां वै विश्ववन्द्यां विशुद्धिदाम्।

हे भगवन्! जो संसार सागर से पार करने के लिए सेतु-पुल है, विश्ववंद्य है, विशुद्धि को देने वाली है ऐसी जिनदीक्षा मुझे दीजिए।

संसारकूपसंपात – हस्तावलम्बन – दायिनीम्।
देहिदीक्षां विभो महचं कर्म विच्छेदकारिणीम्।।

जो संसार कूप में गिरने वालों को हस्तावलंबन देनेवाली है, कर्मों का क्षय करनेवाली है ऐसी जिनदीक्षा मुझे दीजिए।

भगवंस्त्वत्प्रसादेन संप्राप्य जिनदीक्षणम्।
ततो विधातुमिच्छामि निर्विण्णो गृहवासतः।।

हे भगवन्! आपके प्रसाद से जिनदीक्षा प्राप्त कर मैं तप करना चाहता हूँ। मैं गृहवास से विरक्त हो चुका हूँ। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने जिनदीक्षा की भावना का मार्गदर्शन श्री प्रवचनसार जी में इस प्रकार किया है–

आपिच्छ बंधुवग्गं विमोचिदो गुरुकमत्त पुत्तेहिं।
आसिज्ज णाणदंसणचरित्ततववीरियायारं।।2।।

समणं गणिं गुणड्ढं कुलरूववयोविसिट्ठमिट्ठदरं।
समणेहि तं पि पणदो पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो।।3।।

जिनदीक्षा का इच्छुक भव्य जीव अपने कुटुम्ब समूह से पूछकर, माता-पिता, स्त्री-पुत्रों से विरक्त होकर अष्टविध ज्ञानाचार, अष्टविध दर्शनाचार, तेरहविध चरित्राचार द्वादशविध तपाचार तथा आत्मशक्ति को करनेवाला वीर्याचार, इन पाँच आचारों को स्वीकार करके। उन परम आचार्य के पास जाकर नमस्कार करता हुआ, हे प्रभो! मुझको शुद्धात्मतत्त्व की सिद्धि करनेवाला श्रामण्य प्रदान करके स्वीकार करो। तब पंचाचार प्रवीण गुणों से भरे हुए, कुल, रूप और वय से समृद्ध मुक्ति के इच्छुक भव्यों को अतिप्रिय आचार्य कहते हैं भो भव्य! शुद्धात्म तत्त्व की सिद्धिदाता यह भगवती जिनदीक्षा है। इस प्रकार जिनदीक्षा की भावनावाला मुमुक्षु, आचार्य

से कृपा युक्त किया जाता है। पुनः आचार्य भव्य मुमुक्षु के लिए जिनदीक्षा का स्वरूप कहते हैं।

कुन्दकुन्दागम में जिनदीक्षा
भगवती जिनदीक्षा विधि

ततस्तदाज्ञामृतपानपुष्टो निर्बन्धगन्धद्विपवत्प्रहृष्टः।
बाह्यान्तरंगं परिहृत्य संगं शस्ते मुहूर्तेस्थिरलग्नपूर्ते।। (आ.सा.–10)

आचार्य की सम्मति पाकर उनकी आज्ञारूपी अमृतपान से पुष्ट होता हुआ बंधन से छूटे गंधहस्ति के समान प्रहर्षित दीक्षार्थी बाह्य और अंतरंग परिग्रह को छोड़कर स्थिर लग्न से परिपूर्ण शुभ मुहूर्त में।

प्रीत्या चैत्यगृहादि दक्षिणदिशि क्षोणीतले प्रासुके,
प्राचीसन्मुखमुत्तरस्यमथवा कृत्वा सरोजासनम्।
आसीनश्चिकुरोत्करं भवलतां वा दक्षिणावृत्तितः,
प्रोत्पाटयाविकृतिं जगत्रयनतिं स्वीकृत्य जाताकृतिम्।। (आ.सा. 11)

चैत्यगृहादि की दक्षिण दिशा में प्रासुक भूमि पर पूर्व या उत्तर दिशि मुख करके परिग्रह का त्याग कर पद्मासन से बैठ जाय, तदनंतर संसार की लता रूप शिर के केशों को दाढ़ी और मूँछों के बालों को दक्षिणावृत्ति से उखाड़ कर फेंक देवें। उसके बाद तीन जगत में पूज्यनीय हृदय के अविकार को प्रकट करनेवाले यथाजात रूप को वस्त्राभूषण त्याग कर धारण करें।

प्रदक्षिणीकृत्य जिनेन्द्र गेहे प्रविश्य जैन प्रतिबिम्ब पार्श्वे।
रम्ये स्थले वा प्रतियाज्ञयैव क्रियां विधायात्तमहाव्रतादि।।12।।

दिगम्बर मुद्रा के धारण करने के बाद तीन प्रदक्षिणा देकर जिनमन्दिर में प्रवेश कर जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करे तथा जिनेन्द्र भगवान के बिम्ब के पार्श्व भाग में रमणीय स्थल पर बैठकर आचार्यवर्य की आज्ञा से विधिपूर्वक क्रिया विधि को धारण करके महाव्रत को ग्रहण करें।

स्थित्वा ततः प्रमुदितो गुरूवामपार्श्वे,
श्रुत्वा प्रतिक्रमणमीतियोगिवर्गः।

योयं जिनोक्तविधिनाधिगतागमार्थ
श्चारित्रसंपदमुदंचति तां गुणालीम् ।। आ.सा. – 13।।

तदनन्तर जिनकथित विधि से आगम के अर्थ को जानने वाला वह नवीन साधु अत्यन्त हर्षित मन से गुरू के वाम पार्श्वभाग में बैठकर प्रतिक्रमण सुने तथा संघ के साधुओं को नमस्कार करके शास्त्र कथित चरित्र सम्पदा को स्वीकार करे।

दीक्षा विधि में सिद्ध भक्ति, चारित्र भक्ति, योगि भक्ति, शांति भक्ति एवं समाधि भक्ति का पाठ किया जाता है।

दीक्षा के योग्य नक्षत्र–

मुनिदीक्षा – भरणी, उत्तराफाल्गुनी, मघा, चित्रा, विशाखा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती।

आर्यिका दीक्षा – अश्विनी, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद।

क्षुल्लकदीक्षा–पूर्वाभाद्रपद, मूल, घनिष्ठा, विशाखा, श्रवण।

दीक्षाविधि में शुभवार, योग, लग्न आदि का विचार भी करना चाहिए।

दीक्षा के आयोग्य काल–

ग्रहोपरागग्रहणे परिवेषेन्द्रचापयो:।
वक्रग्रहोदये मेघपटलस्थगितेऽम्बरे।।159 – म.पु. 39।।

नष्टाधिमासदिनयो: संक्रान्तौ हानिमत्तिथौ।
दीक्षाविधि मुमुक्षूणां नेच्छन्ति कृतबुद्धय:।।160 – म.पु. 39।।

जिस दिन ग्रहों का उपराग हो, ग्रहण लगा हो, सूर्य–चन्द्रमा पर परिवेष (मण्डल) हो, इन्द्रधनुष उठा हो, दुष्ट ग्रहों का उदय हो, आकाश मेघ पटल से ढका हुआ हो, नष्ट मास अथवा अधिक मास का दिन हो, संक्रान्ति हो, अथवा क्षयतिथि का दिन हो, उस दिन बुद्धिमान आचार्य मोक्ष की इच्छा करने वाले भव्यों के लिए दीक्षा की विधि नहीं करना चाहते अर्थात् उस दिन किसी शिष्य को नवीन दीक्षा नहीं देते हैं।

दीक्षा ग्रहण में मासफल विचार–

दीक्षा स्वीकारणं चैत्रे बहु दु:खफलप्रदम्।
बैशाखे रत्नलाभश्च ज्येष्ठे च मरणं ध्रुवम्।।
आषाढ़े बन्धुनाश: स्याच्छ्रावणे तु शुभावह:।
प्रजाहानिर्भाद्रपदे सर्वत्र सुख माश्विने।।
कार्तिक धनवृद्धि: स्यान्मार्गशीर्षे शुभप्रदम्।
पौषे तज्ज्ञानहानि: स्यान्माघे मेधाविवर्द्धनम्।।
फाल्गुने सुखसौभाग्यं सर्वत्र परिकीर्तितम्।
दीक्षाकर्मफलं मासेष्वित्येवं च शुभाशुभम्।।

✻ चैत्र में दीक्षा स्वीकार करना बहुत दुखरूप फल को देने वाला
✻ वैशाख में रत्नलाभ ✻ ज्येष्ठ में मरण
✻ आषाढ़ में बन्धुनाश ✻ श्रावण में शुभदायक
✻ भाद्रपद में प्रजाहानि ✻ आश्विन में सर्वत्र सुख
✻ कार्तिक में धनवृद्धि ✻ मार्गशीर्ष में शुभदायक
✻ पौष में ज्ञानहानि ✻ माघ में बुद्धि वृद्धि

✻ फाल्गुन में सर्वत्र सुख सौभाग्य की प्राप्ति होती है। इस प्रकार मासों में दीक्षा लेने का शुभाशुभ फल कहा है।

पंचमकाल में भी दीक्षा संभव

तरुणस्य वृषस्योच्चै: नदतो विह्यतीक्षणात्।
तारुण्य एवं श्रामण्ये स्थास्यन्ति न दशान्तरे।।75 म.पु. 41।।

ऊँचे स्वर से शब्द करते हुए तरुण बैल का विहार देखने से पंचमकाल में लोग तरुण अवस्था में ही मुनिपद में ठहर सकेंगे अन्य अवस्था में नहीं।

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेई साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णई सो वि अण्णाणी।।मो.पा. 76।।

भरतक्षेत्र में दुस्सम नामक पंचमकाल में मुनि के धर्मध्यान होता है तथा

वह धर्मध्यान आत्मस्वभाव में स्थित साधु के होता है जो ऐसा नहीं मानता वह अज्ञानी है।

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहि इंदत्तं।
लोयंतिय देवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।77-मो.पा.।।

आज भी रत्नत्रय से शुद्धता को प्राप्त हुए मनुष्य आत्मा का ध्यान कर इन्द्रपद तथा लौकान्तिक देवों के पद को प्राप्त होते हैं और वहाँ से च्युत होकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

'अद्यापि पंचमकालोत्पन्ना: समनस्का: पंचेन्द्रिया उत्तमकुलादि सामग्रीप्राप्तवैराग्येण गृहीतदीक्षास्त्रिरत्न शुद्धा: सम्यक्त्वज्ञानचारित्रनिर्मला वर्तन्त एव ये, कथयन्ति महाव्रतिनो न विद्यन्ते ते नास्तिका जिनसूत्रबाह्या:।' (मो.पा.टी. 77)

आज भी पंचमकाल में उत्पन्न सैनी पंचेन्द्रिय जीव उत्तम कुल आदि सामग्री को प्राप्त होकर वैराग्यवश दीक्षा धारण करते हैं तथा रत्नत्रय से शुद्ध रहते हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारक रहते ही हैं किन्तु जो कहते हैं इस समय महाव्रती नहीं है। वे नास्तिक हैं उन्हें जिनशासन से बाह्य जानना चाहिए।

जिनदीक्षा में प्रदत्त भिक्षा ही सर्वोत्कृष्ट।

भगवती जिनदीक्षा में आचार्यदेव के द्वारा दीक्षार्थी को चरित्र की संपदा प्रदान की जाती है। दीक्षार्थी के जीवन की यह प्रथम सर्वोत्कृष्ट भिक्षा है जिसे प्राप्त करने के लिए वह यतिवल्लभ गुरुदेव के समक्ष विनम्र होकर, हाथ जोड़ विनयपूर्वक बार-बार याचक बनकर याचना करता है। चरित्र संपदा को प्राप्त कर अपने को ऋणी तथा गुरु को परमोपकारी मानकर सच्ची श्रद्धा करता है।

अतीत के अनंत भवों के पश्चाताप का फल वर्तमान भव में प्राप्त जिनदीक्षा ही है। आत्महित की सच्ची भावना रखने वाला जिनदीक्षा प्राप्त कर आनंदित होता है। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की चर्या करता हुआ सम्यक्चारित्र के मार्ग में विहरता है। द्रव्य-भाव श्रामण्य को अनुभव करता हुआ भी भाव श्रमणता को उत्कृष्ट मानकर पराश्रित द्रव्य श्रमणता से छूटने का उपाय करता है। परद्रव्य की इच्छा को मिष्ठ दूध में नींबू के समान अहितकारी मानता है। सदैव यत्नाचार पूर्वक क्रिया करता है। और गुरु द्वारा प्रदत्त चारित्र की संपदा का रक्षण करता हैं।

मुनिराज जब भाव श्रमणता में लीन होते हैं तब सहज ही निर्दोष होते हैं किन्तु जब द्रव्य श्रमणता का विकल्प आता है तब निर्दोष रहने का भाव रखना आवश्यक है। निर्दोष द्रव्य श्रमणता ही भाव श्रमणता प्राप्ति की योग्यता है। हमारे परमपूज्य निर्ग्रन्थ साधकों को इस कलिकाल में सजग रहने की आवश्यकता है। भाव श्रमणता के साथ द्रव्य श्रमणता में दोष पैदा करनेवाले साधन मोबाईल, लैपटॉप, जैसी वस्तुओं से दूर रहकर चरित्र की संपदा का रक्षण करना अनिवार्य है। तभी श्रमणता का सच्चा सुख मिलेगा।

'जयदु जिणागम पंथो।'
'जिनागम पंथ जयवंत हो।'

हमदर्द

मिटाना चाहते हो दर्द तो अब मर्द बन जाओ।
बुझाना चाहते हो आग तो अब सर्द बन जाओ।
धड़कते दिल में अब कुछ प्रेम की धड़कन करो पैदा।
बनाना चाहते अपना तो अब हमदर्द न जाओ।